ISSN 2815-8326

हिंदी त्रैमासिक

पहचान

देश से हम, हमसे देश

वर्ष 3, अंक 4, अप्रैल-जून 2025, पृष्ठ संख्या 32
प्रधान संपादक : प्रीता व्यास

आवरण चित्र - माधव विनोद पुरोहित

तुमसे दूरी
एक छोटे आकार का शहर है,
जिसकी हर गली में मेरे कदमों के निशान हैं।
Poster: bodhisatva Vivek
मेरा प्यार
एक बड़े आकार का शहर,
जिसके कई हिस्सों से तुम अब भी अपरिचित हो।
~ गीत चतुर्वेदी

हिंदी त्रैमासिक
पहचान
देश से हम, हमसे देश

संस्थापक/ प्रधान संपादक
प्रीता व्यास

सलाहकार संपादक
रोहित कृष्ण नंदन

ले आउट / ग्राफ़िक्स
प्रिया भारद्वाज

कवर पेज
माधव विनोद पुरोहित

प्रकाशक
पहचान

आकलैंड, न्यूज़ीलैंड

editor@pehachaan.com

डिस्क्लेमर

पत्रिका में प्रकाशित लेख, रचनाएं, साक्षात्कार लेखकों के निजी विचार हैं, उनसे प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं. रचनाओं की मौलिकता के लिए लेखक स्वयं ज़िम्मेवार है. कुछ चित्र और लेखों में प्रयुक्त कुछ आंकड़े इंटरनेट वेबसाइट से संकलित किए गए हो सकते हैं.

दो शब्द

भारत में शादियां होती हैं तो ऐसे ही किसी भी दिन नहीं हो जातीं. महीना, पक्ष, दिन, सितारे, संयोग सबकी गणना के बाद होती हैं. मोटा-मोटी तौर पर देव उठावनी एकादशी से शुरू होता है शादियों का मौसम और देव शयनी एकादशी पर समाप्त हो जाता है. कमलनयन, विश्वाधार, लक्ष्मीपति भगवान विष्णु जब विश्राम करते हैं तब उन महीनों में विवाह कार्य नहीं होते.

विवाह का स्वरूप बदल दिया है समय ने. पहले ये सिर्फ दो आत्माओं का बंधन ही नहीं होता था एक सामाजिक संस्था के तौर पर होता था जहां दो लोग जीवन पर्यन्त एक दूसरे का साथ देने का वचन लेते थे, दैहिक सुख के लिए नहीं बल्कि समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व के निर्वाहन के लिए.

संस्कार भी महीनों चलते थे, किसी दिन लगुन लिखी जा रही है, किसी दिन कुंवा पुजाई हो रही है, कुंवें से मिट्टी लाई जा रही है, बन्ना या बन्नी गाए जा रही है, किसी दिन हल्दी हो रही है, किसी दिन मंडप लग रहा है, दूल्हा पुजाई, ज्योनार, गालियां गाई जा रही है, भांवरें, पलकाचार वगैरह. विदा की घडी आते तक अनेकों संस्कार. संस्कार जो निर्वाह और मर्यादा के बीज बोते थे.

रामायण में सीता विवाह का प्रसंग तुलसीदास जी ने कितना सुन्दर वर्णित किया है. बहुत सी लोक भाषाओं में भी राम विवाह का प्रसंग लोक गीतों में मिलता है-

"बने दूल्हा छब देखो भगवान की
दुल्हन बनी सिया जानकी."

"पहचान" के इस अंक में विवाह गीतों पर एक लेख के साथ कुछ अच्छी सामग्री जुटाने का प्रयास रहा है, कितना सफल हुई ये आपकी प्रतिक्रियाएं बतायेंगीं. आपका साथ मेरी शक्ति है, जुड़िये और जुड़े रहिये.

प्रीता व्यास

इस अंक में ...

पाठकीय प्रतिक्रियाएं 05

आलेख

जीवन क्या है? - (राजेंद्र रंजन चतुर्वेदी) 6 - 9

पृथ्वी पर रहने का किराया - (शरद कोकास) 10 - 11

लोक जीवन

बुंदेलखंड के विवाह और लोकगीत - (वंदना अवस्थी दुबे) 12 - 15

कविता

बाजरे का पौधा - (मालिनी गौतम) 16

याद आ गया गांव - (सुनील श्रीवास्तव) 17

तुम्हारी आंखों में छुपे मसौदे - (मुकेश इलाहाबादी) 18

एक अनुत्तरित प्रश्न - (निशा कुलश्रेष्ठ) 19

प्रेम और जंगल - (मधु सक्सेना) 20

मत काटो कोमल पंखों को - (विनीता गुप्ता) 26

कहानी

नैनं दहति पावकः - (सुधा गोयल) 21 - 24

संस्मरण

आल्हा गायक बंदू कुम्हार - (बाबूलाल दाहिया) 25 - 26

एक मौजूं अनेक शेर

धूप, छांव और गर्मियां - (संकलन: देवदत्त संगेप) 27 - 28

बाल कविता

गर्मी आई - (डॉ. हेमंत कुमार) 29

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक समीक्षा - (समीक्षा: सुजाता कुमारी) 30 - 31

गीता गैरोला जी को मेरी ओर से बधाई पहुंचाइये. उनकी लोक कथा "जलांध" ने रुला दिया. संबंधों का सच है ये.

आशा झा, भारत

सभी लेख सारगर्भित, अच्छा चयन है. ग़ज़लों ने भी लुभाया. इस अंक में कवितायें नज़र नहीं आईं, बल्कि मैं तो चाहूंगी कि आप दोहे, छंद वगैरह भी प्रकाशित कीजिये. अगर आपने किये हों तो फिर शायद मैंने वो अंक पढ़े नहीं. अच्छी पत्रिका के लिए आपको बधाई.

कला वर्मा, न्यूज़ीलैंड

आपकी पत्रिका का नाम बड़ा ही सार्थक है- "पहचान". मैं हरिवंश राय राय बच्चन जी की चार पंक्तियां, इस पहचान को लेकर सुनना चाहता हूं -

"पूर्व चलने के बटोही, बाट की पहचान कर ले.
पुस्तकों में है नहीं छापी गई इसकी कहानी,
हाल इसका ज्ञात होता है ना औरों की जबानी,
अनगिनत राही गए इस राह से, उनका पता क्या?
पर गए कुछ लोग इस पर छोड़ पैरों की निशानी."
आदरणीया मैम मैं ये देख पा रहा हूं कि निश्चित ही "पहचान" अपनी छाप, अपनी निशानी छोड़ेगी.

कृष्ण कांत उपाध्याय, भारत

जनसंख्या की दृष्टि से भारत के सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश पर हरी राम यादव जी का लेख 'जहां जमने राम और कृष्ण' अच्छा लगा. मैं भी उत्तर प्रदेश का रहने वाला हूं. हमारे पास बहुत समृद्ध विरासत है गर्व करने के लिए. राम की अयोध्या हमारी, कृष्ण की मथुरा हमारी. ताजमहल वाला आगरा हमारा, नवाबी तहज़ीब वाला लखनऊ हमारा, बौद्ध तीर्थ सारनाथ, वाराणसी (बनारस), गंगा-यमुना के संगम वाला इलाहाबाद (प्रयाग) भी हमारा. बहुत धन्यवाद उत्तर प्रदेश स्थापना दिवस पर लेख देने के लिए.

नवल किशोर पांडे, भारत

हर बार की तरह एक बढ़िया अंक. सधा संपादन, सटीक सामग्री, सुरुचिपूर्ण लेआउट और सुंदर मुख्य पृष्ठ. "पहचान" की पहचान बढ़ती जाए ऐसी कामना करती हूं.

सुरभि अस्थाना, सिंगापुर

इंटरनेट का ज़माना, सब कुछ ऑन- लाइन. ढेरों पत्रिकाएं अब ऑन लाइन उपलब्ध हैं, उस भीड़ में अपनी अलग पहचान बनाती दिख रही है आपकी पत्रिका मैडम प्रीता व्यास जी. मैंने सभी अंक तो नहीं पढ़े लेकिन जो दो- तीन पढ़े मुझे बहुत अच्छे लगे. ज्ञान से अधिक महत्वपूर्ण और मूल्यवान और कुछ नहीं और आपकी पत्रिका उसे ही जैसे गागर में भर के सामने रख देती है. साधुवाद.

केसर सक्सेना, अमेरिका

माओरी लोक कथा का अनुवाद अच्छा लगा, कृपया अन्य देशों की लोक कथाओं को भी समय- देती रहें. हमारे अपने भारत में भी हर प्रदेश के पास ढेरों लोक कथाएं हैं. अगर आप चाहेंगीं तो मैं कुछ उपलब्ध करा सकती हूं.

मणिमाला, भारत

जीवन क्या है?

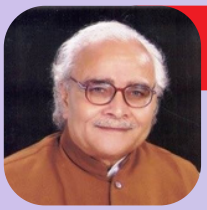

राजेंद्र रंजन चतुर्वेदी

मुझसे कोई यह पूछे कि एक वाक्य में बतलाओ- जीवन क्या है? तो मेरा उत्तर होगा - "मूल-प्रवृत्तियों का द्वंद्व और समायोजन."

मूल प्रवृत्तियों को भारतीय दर्शन ने त्रिगुणात्मक प्रकृति के रूप में पहचाना था. विराट प्रकृति में अनंत अन्तरिक्ष और उसमें गतिशील असंख्य ब्रह्मांड और फ़िर एक ब्रह्मांड के ग्रह-नक्षत्र और यह धरती, फ़िर धरती के अन्य असंख्य प्राणियों के साथ मनुष्य. मनुष्य भी प्रकृति की रचना है. प्रकृति में ही रहता है, प्रकृति में ही जीवन की ऊर्जा ग्रहण करता है. उसकी अन्त: प्रकृति की जो गति है उसे मूल प्रवृत्ति या त्रिगुणात्मक प्रकृति कहा जाता है.

1.भूख, 2. रति या सेक्स, 3. संग्रह अथवा लोभ-लालच, 4. प्रभुता, 5. गौरव, 6. आत्मविस्तार या सिसृक्षा या संतानकामना, 7. रक्षा, 8. आराम या प्रयत्न-लाघव, 9. होड़ या अनुकरण, तथा 10. जिज्ञासा (जानने की इच्छा), ये दस मूल प्रवृत्ति हैं जिनसे प्रेरित-उत्तेजित-निर्देशित होकर मनुष्य का जीवन संचालित होता है, हो रहा है.

इनमें से कुछ मूल-प्रवृत्ति अन्य प्राणी या पशुओं में भी होती हैं. भर्तृहरि ने बहुत पहले कहा था- "आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्".

भूख, प्रभुता, संग्रह, रक्षा के दबाव में मनुष्य इधर से उधर जाता है, एक देश से दूसरे देश में जाता है भौगोलिक संक्रमण करता है. मूल प्रवृत्तियां ही युद्ध, विषमताओं और अत्याचारों का कारण बनती हैं. मनुष्य मूल प्रवृत्तियों के कारण ही सक्रिय होता है. मूल प्रवृत्ति को डार्विन ने मानव व्यवहार की प्रेरणा कहा तो मैक्डूगल ने जीवन, मस्तिष्क और संकल्प का रहस्य मूल प्रवृत्तियों को ही बतलाया.

जिस प्रकार जलधारा ऊपर से नीचे की ओर सहज ही बहती है, उसी प्रकार मानव का मन मूल प्रवृत्ति के प्रवाह में सहज ही प्रवाहित होता है. सहज है क्योंकि प्रकृति है और प्रकृति है इसलिए ये बदलती नहीं, जो मूल प्रवृत्तियां बर्बर युग में थीं, वही आज भी हैं. मूल प्रवृत्ति का सवाल वही है, नया नहीं है.

1. भूख. पशु-पक्षियों में हम देख सकते हैं, रोटी का टुकड़ा है एक, दूसरा कुत्ता आ गया, भोंकना शुरू हो गया. भूख के लिये प्रत्येक प्राणी अपना-अपना जुगाड़ करता है, द्वंद या संघर्ष भी करता है. रोटी की खोज, रोटी के लिए संघर्ष खेत का, जमीन का, संघर्ष टेक्नोलॉजी में परिवर्तन का कारण भी मूल प्रवृत्ति है. जंगल में भूख का संघर्ष और बलवान का भोजन. रोजगार अर्थात् रोटी. रोटी अर्थात् भूख की मूल-प्रवृत्ति. एक ने इतना संग्रह किया कि दूसरे के लिए दाना-दाना मुश्किल बात बन गयी. एक ने जमीनों पर कब्जा किया और दूसरे के लिए झुग्गी भी दु:स्वप्न हो गया. इस संघर्ष या द्वंद के बीच ही शोषण के विरुद्ध विचार का जन्म होता है. गरीब और अमीर की लड़ाई. आर्थिक-हितों का संघर्ष क्या है? भूख की लड़ाई है. किसानों का आंदोलन उसी का रूप था.

2. रति या सेक्स. नर और नारी का परस्पर आकर्षण प्राकृतिक और अमोघ है. इसे आप बंदरों में भी देख सकते हैं. जब मौसम होता है तो सेक्स के लिए बंदर और कुत्तों का संघर्ष देखा जा सकता है. रति संबंध की भावना इतनी प्रबल है कि तनिक भी संदेह होने पर हत्या जैसे अपराध भी हो जाते हैं. इसलिए सामाजिक विवेक विवाह जैसे रीति-रिवाजों, सतीत्व और पातिव्रत के रूप में मूल्यों अथवा पाप-पुण्य की अवधारणाओं की प्रतिष्ठा करता है. इन प्रवृत्तियों को भक्तों और संतों ने विषय वासना के रूप में देखा, माया के रूप में देखा महाप्रभु वल्लभाचार्य ने, कहा- "जीवा: स्वभावतो दुष्टा:", जीव स्वभाव से दोष युक्त होते हैं. इसी से राग जन्म लेता है, कला, संगीत, नृत्य की भूमि यही राग है.

3. संग्रह. संग्रह की मूल-प्रवृत्ति ही है कि एक ने प्राकृतिक-संसाधनों पर कब्जा कर लिया, दूसरा रोजगार के लिए लड़ रहा है. लोभ-लालच को सभी समझ रहे हैं.

4. जिज्ञासा. जिज्ञासा मूल प्रवृत्ति के कारण से नए विचार आते हैं, ज्ञान- विज्ञान का विकास होता है. जिज्ञासा प्रवृत्ति के द्वारा मनुष्य प्रकृति के संबंध में जानकारी करता है, जीवन के संसाधनों की खोज करता है और अपने लिए एक अनुकूल परिवेश की रचना करता है, टेक्नोलॉजी की रचना करता है, प्रौद्योगिकी की रचना करता है. मनुष्य के समस्त ज्ञान-विज्ञान प्रकृति का अध्ययन करने वाले विज्ञान (नेचुरल साइंस) हों अथवा दर्शनशास्त्र, समाजशास्त्र, इतिहास, मानवशास्त्र, साहित्य, कला, राजनीति शास्त्र, धर्मशास्त्र, मनोविज्ञान आदि मूल प्रवृत्तियों के द्वंद्व तथा समायोजन का रूप हैं.

5. आत्मविस्तार या सिसृक्षा या संतान कामना संतान की इच्छा के परिणाम स्वरूप नई संतति आती है. संतान कामना से ही परिवार का जन्म होता है. वंश विस्तार होता है. जाति, कुनबा, कबीला, राष्ट्र इसी का विकास है.

6. रक्षा. प्रकृति से रक्षा और अन्य जानवरों से भी रक्षा. (शेर) का भय. रक्षा के लिए ही चिड़िया नीड़ (घोंसला) बनाती है, चूहा बिल बनाता है, जंगली जानवर गुफा बना लेते हैं. राज्य का विस्तार, युद्ध, सेना, ये भौतिक द्वंद्व के रूप हैं, इसके लिए अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण, अस्त्र-शस्त्रों का उद्योग और व्यापार होता है.

7. प्रभुता और 8. गौरव. गौरव और प्रभुता मूल प्रवृत्तियां हैं, इसे हम अहंकार या घमंड के रूप में जानते हैं. जाति की बात उठ रही है, यह गौरव की प्रवृत्ति से जुड़ा सवाल है. चुनाव का युद्ध प्रभुता का युद्ध है. निचले स्तर पर दादा लोग अपनी सीमा बनाते हैं. धर्म और जीवन मूल्यों का द्वंद्व भी मूल रूप से रक्षा (भय) और अधिकार की लड़ाई है, गौरव और प्रभुता की मूलप्रवृत्तियों की लड़ाई है.

9. होड़ या अनुकरण. एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से और एक समाज दूसरे समाज से सांस्कृतिक तत्व ग्रहण करता है, अनुकरण करता है. हम बालक को देखते हैं, उसका बोलना-चलना उठना-बैठना बड़ों की तरह ही तो होता है फिर बड़े होकर वह भी होड़ करता है, उसको भी बढ़ना है, तो वह दूसरे को देख कर के बढ़ता है, दूसरे को देख कर के बनता है, यह फैशन इत्यादि का प्रचलन उस होड़ का ही परिणाम है.

10. आराम या प्रयत्न लाघव के कारण वर्ग का जन्म होता है. एक काम करता है, दूसरा उसकी कमाई खाता है. व्यष्टिजीवन में हो अथवा समष्टि जीवन में, जाति या राष्ट्र के जीवन में, संघर्ष अथवा युद्ध के विभिन्न रूप हैं. रूस और यूक्रेन का युद्ध हो रहा है. समाज में रहते हैं तो एक की इच्छा का दूसरे की इच्छा से संबंध है. एक की इच्छा दूसरे की इच्छा को प्रभावित करती है. एक की इच्छा दूसरे की इच्छा का दमन करती है अथवा एक की इच्छा दूसरे की इच्छा के लिए बाधा बन जाती है, तब द्वंद्व प्रारंभ हो जाता है. इस द्वंद्व के अनेक रूप हैं. व्यक्ति और व्यक्ति के बीच, व्यक्ति और समुदाय के बीच, वर्ग और वर्ग के बीच.

मनुष्य की बात कुछ जटिल और सूक्ष्म है, उसमें अन्तर्द्वन्द्व भी होता है. बात यह है कि मूलप्रवृत्तियों का यह द्वंद्व अपने नाम और रूप बदल लेता है, उसको बढ़िया-बढ़िया नाम दे देता है. कहीं नारी-अधिकार की लड़ाई है तो कहीं वह जातियुद्ध का रूप ले लेता है. द्वंद्व का यह भौतिक रूप है किंतु इसके अतिरिक्त भावात्मक द्वंद्व भी द्वंद्व ही होता है. ईर्ष्या-द्वेष क्या हैं? निंदा क्या है? भावात्मक द्वंद्व, सांस्कृतिक द्वंद्व में एक पीढ़ी-अंतराल का रूप भी है और दूसरा अपसंस्कृति का भी द्वंद्व है. विचारधारा की लड़ाई हालांकि भावात्मक और भौतिक द्वंद्व एक दूसरे से जुड़े हुए हैं. कहीं भावात्मक द्वंद्व भौतिक द्वंद्व का रूप ग्रहण कर लेता है तो कहीं भौतिक द्वंद्व भावात्मक द्वंद्व बन जाता है. गाली-गलौज भी द्वंद्व का वाचिक रूप है.

मानसिक आघात भी तो आघात ही है. प्रवृत्तियों के द्वंद्व को परिवार में भी देखा समझा जा सकता है, पड़ोस में भी, स्टाफ में भी, समाज में भी राजनीति में भी. ये द्वंद्व एक-पक्षीय भी होता है, द्विपक्षीय या पारस्परिक भी होता है और बहुपक्षीय भी होता है. लेकिन द्वंद्व की यह प्रक्रिया निरंतर है. एक पल के लिए भी नहीं रुकती. मूल प्रवृत्तियों के द्वंद्व, संघर्ष, नियमन, नियंत्रण की प्रक्रिया में सबल-सशक्त की भूमिका निर्णायक होती है. शक्ति का सिद्धांत अपना काम करता है.

सोवियत रूस के समाजवादी शासकों ने सोचा था कि प्रशिक्षण करने से ब्रेनवाश करने से मूल प्रवृत्तियों को बदला जा सकेगा, आनुवंशिकी विज्ञान इसी प्रकार से सोचता है और प्रयोग करता है, भिन्न-भिन्न प्रक्रिया में भिन्न-भिन्न रूपों में प्रवृत्तियों की गति होती है. प्रवृत्तियों का वेग बंधन को तोड़ देता है यदि वह दबाया जाता है. तो व्यक्तित्व में तनाव कुंठा और अंतर्द्वंद उत्पन्न कर देता है. परिवेश और मूल प्रवृत्तियों के समायोजन की समस्या पेट भरने के बाद मनुष्य की सबसे बड़ी समस्या है. भौतिक द्वंद्व तो होता ही है, जर-जोरू-जमीन का संघर्ष. आर्थिक आदान-प्रदान, उत्पादन-संबंध, प्राकृतिक-संपदा पर नियंत्रण, वर्ग-संघर्ष इस द्वंद्व का ही रूप है, एक मनुष्य की प्रवृत्ति दूसरे मनुष्य की प्रवृत्ति की सहयोगी भी होती है, परस्पर पूरक भी होती है तथा परस्पर विरोधी भी होती है.

सहयोग तथा संघर्ष की यह प्रक्रिया है समाज में निरंतर चलती रहती हैं समाज में जहां आवश्यकताएं समान होती हैं, जैसे भोजन सभी को चाहिए, प्राकृतिक संसाधन सभी को चाहिए, मान्यताओं से रक्षा सभी की आवश्यकता है. समान आवश्यकताएं मनुष्य को एक-दूसरे के निकट लाती हैं. समाज का विकास होता है.
आप वर्ग संघर्ष कहें या जाति का युद्ध कहें या धर्म का युद्ध कहें, मूल रूप से ये सब मूल प्रवृत्तियों का संघर्ष है.

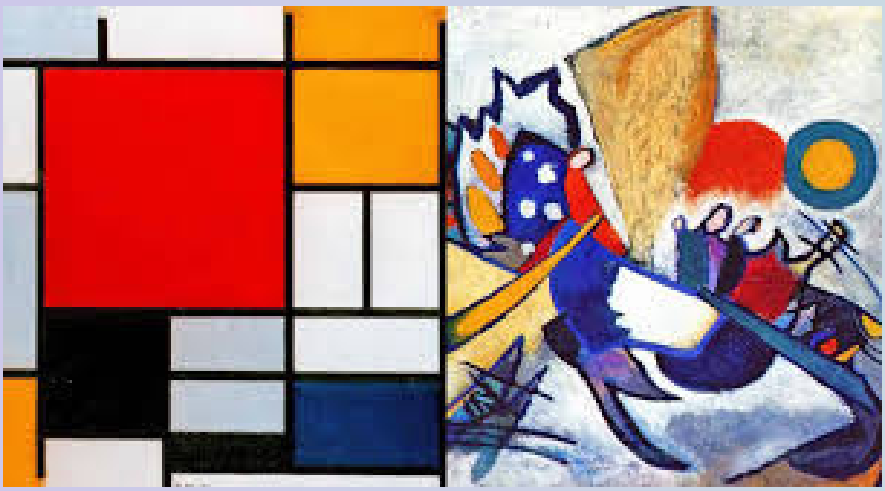

पृथ्वी पर रहने का किराया

(मंगलवार, 22 अप्रैल 2025 को पृथ्वी दिवस (Earth Day) की 55 वीं सालगिरह है. अपने इस ग्रह को मूढ़तावश नुक्सान तो बहुत पहुंचाया हमने लेकिन अब समय है कि सचेत होकर इसे सम्हालें. इस अवसर पर "पहचान" में हम शामिल कर रहे हैं, जाने-माने लेखक शरद कोकास का ये लेख.)

शरद कोकास

सही-सही बताइये, क्या आपके मन में कभी यह ख़्याल आया है कि अगर हमें पृथ्वी पर रहने का किराया देना होता तो क्या होता?आप सोच रहे होंगे कैसा पागल है जो ऐसा अजीब सा सवाल पूछ रहा है. आपके मन में तो यही होगा कि पृथ्वी तो हमारी संपत्ति है उसका किराया हम क्यों दें? चलिये एक उदाहरण से देखते हैं. आपने मकान खरीदा होगा या किराए से लिया होगा? मकान खरीदने से पहले तो हम हमेशा जानना चाहते हैं यह किसने बनाया है या ज़मीन खरीदने से पहले यह जानना चाहते हैं कि वह ज़मीन किसकी है?

या उसके ठीक-ठाक कागज़ात हैं या नहीं? हम इस बात के प्रति आश्वस्त हो जाना चाहते हैं कि हम कहीं ठगे तो नहीं जा रहे. आखिर ज़मीन या मकान का पैसा दे रहे हैं भाई.
ज़मीन या मकान ही नहीं छोटी से छोटी वस्तु भी हम यदि खरीदते हैं या किराये पर लेते हैं तो उसके बारे में जानना चाहते हैं, उसे किसने बनाया? उसका ब्रांड क्या है? वह कहां बनी है? उसका मालिक कौन है? इसके अलावा यह भी कि वह हमारे काम की है या नहीं? आदि-आदि.
ऐसा है तो फिर हम यह क्यों नहीं जानना चाहते कि जिस पृथ्वी पर अपने पुरखों के ज़माने से हम रह रहे हैं वह कहां से आई? न आपने सोचा, न पुरखों ने सोचा, बस अपनी मर्ज़ी हुई और आपस में बांट लिया, मुफ़्त का माल जो ठहरा.

सही है, जो चीज़ मुफ्त में मिल रही हो या जिसके लिए किराया ना देना पड़ रहा हो उसके बारे में क्या पूछना? कहीं से भी आई हो पृथ्वी, कोई भी इसका मालिक हो, हमने तो इसे माल-ए-मुफ्त समझकर इसके टुकड़े-टुकड़े कर इसे बांट लिया है. जो दिमाग से जितना चालाक उसका हिस्सा उतना बड़ा. जो बड़ा ज़मीदार उसके पास सैकड़ों एकड़ ज़मीन और जो सीधा-सादा गरीब उसके पास कुछ नहीं.
एक ओर कुछ लोगों के पास बड़े-बड़े कारखाने, बड़े-बड़े प्रतिष्ठान और दूसरी ओर किसी के पास अपना कहने को ज़मीन का एक टुकड़ा तक नहीं. देख लो, बड़े-बड़े देश ज़मीन के छोटे-छोटे हिस्से के लिए युद्ध करने में लगे हैं.

वो कहते हैं हमारा कश्मीर, हम कहते हैं हमारा कश्मीर. कश्मीर का मतलब? कश्मीर का आकाश नहीं, कश्मीर की ज़मीन, जो ना उन्होंने बनाई ना हमने और ज़मीन भी इसलिए ताकि उसमें होने वाली, उससे प्राप्त होने वाली वस्तुओं का दोहन कर सकें.
हमारे मित्र प्रो.सियाराम शर्मा एक बढ़िया उदाहरण देते हैं, वे कहते हैं आपको याद होगा कुवैत पर अमेरिका का हमला, वह सिर्फ इसलिए किया गया था कि वहां बेशकीमती तेल था, फ़र्ज़ कीजिये वहां सिर्फ आलू होता, तो क्या अमेरिका हमला करता?

तो मुफ्त में जो मिला है उसे तो आप बरबाद करेंगे ही. उदाहरण के लिए, अगर आपने मुंबई की चालें देखी होंगी या शहरों की पुरानी बस्तियों में जर्जर मकान देखे होंगे तो उनमें रहने वालों की स्थिति समझ सकते हैं. अक्सर ऐसा होता है कि जब तक यह इमारतें धराशायी नहीं होतीं, लोग इन्हें खाली ही नहीं करते, दुर्घटनाओं में कई लोग दब कर मर भी जाते हैं. हालांकि उनके रहने के लिए और कहीं ठिकाना भी तो नहीं होता सो जाएं तो जाएं कहां? पीढियां बीत जाती हैं उनकी फुटपाथों पर.

हम लोग भी इस पृथ्वी पर रहते हुए धीरे-धीरे पृथ्वी को उसी विनाश की ओर ले जा रहे हैं जहां न ये पृथ्वी रहेगी न हम. आप कहेंगे हमें क्या? हमारी आनेवाली पीढ़ीयां जानें. हम तो चैन से रह ही लेंगे अपने जीते जी. लेकिन ऐसा नहीं है भाई. आधी रात को जब यह पृथ्वी हिलती है तब समझ में आता है कि कहीं न कहीं कुछ गड़बड़ तो है, या फिर बाढ़ का पानी जब देहरी छूने लगता है और खेतों में फसलों को बर्बाद कर देता है तब लगता है कि ऐसा सोचना सही नहीं है. जब मौसम के परिवर्तन अत्यधिक गर्मी या सर्दी के रूप में सताते हैं तब अपनी कारगुजारियां याद आती हैं. या फिर भोपाल गैस कांड की तरह आधी रात को उठकर भागना पड़ता है तो पता चलता है कि मल्टी नेशनल कंपनियों की गलतियों का खामियाज़ा हमें भुगतना पड़ रहा है.

हालांकि यह इतना आसान नहीं है, इसके पीछे एक षडयंत्र भी है जो विकास के नाम पर विश्व की पूंजीपति सरकारें कर रही हैं, बांधों की जरुरत से ज्यादा ऊंचाई, जंगल और ज़मीन पर मल्टी नेशनल कंपनियों को कारखाने के लिए लाइसेंस, नदियों का जल बेचने की अनुमति, ज़मीन से जल का दोहन और विकास के नाम पर खेतों का अधिग्रहण. यह पृथ्वी न उनकी है न हमारी लेकिन इसके नष्ट होते जाने का दोष सिर्फ हमीं पर क्यों? सोचा है कभी?

सोचिए और साथ में वरिष्ठ कवि लीलाधर जगूड़ी की एक कविता पढ़िए । वे यही कहते है -

* बची हुई पृथ्वी पर*

आज का दिन
इस घाटी में मेरा दूसरा दिन है
और एक-एक कण की रणगाथा से भरी
समुद्र-सहित तैरती यह पृथ्वी
आती-जाती रोशनी का तट है,
ज़मीन की भाषा में ज़मीन को
पानी की भाषा में पानी को
कुछ कहना कितना मुश्किल है,
अपनी भाषा में अपने को
कुछ भी कह सकूं और यहां रह भी सकूं
कितना मुश्किल है.

बुंदेलखंड के विवाह और लोकगीत

वंदना अवस्थी दुबे

हिंदुस्तान विभिन्न संस्कृतियों को समेटने वाला एक अद्भुत देश है. ज़रा-ज़रा सी दूरी पर यहां लोकाचार में भिन्नता स्पष्ट दिखाई देती है. त्यौहार मनाने के तरीक़े भी अलग-अलग हैं. विवाह की रीतियां भी भिन्न हैं. लेकिन आज मैं बात करूंगी, अपने बुंदेलखंड के विवाह की रीतियों और उनसे जुड़े मधुर लोकगीतों की.

बुंदेलखंड में विवाह की अलग ही रौनक होती है. वैवाहिक रीतियों का आरंभ होता है 'लगुन' लिखे जाने से. लगुन वो पत्र होता है, जिसमें विवाह की तमाम विधियां, तिथि सहित लिखी होती हैं. लगुन को बुंदेली में 'सुतकरा' भी कहते हैं. लगुन लिखने के बाद घर की महिलायें अनाज का आदान-प्रदान करती हैं सूप के माध्यम से और गाती हैं -

कोरे से कगदा, मंगाये राजा बाबुल,
बेटी की लगुन लिखाई मोरे लाल....
पांच सुपारी मंगाई बाबुल जू,
बेटी की लगुन लिखाई मोरे लाल....
पांच हरद की गंठिया मंगाई बाबुल जू,
बेटी की लगुन लिखाई मोरे लाल....

तिलक - लगुन के बाद बारी आती है 'तिलक' की. इस रस्म के लिये बेटी के पिता, चाचा, भाई और अन्य परिजन वर के घर जाते हैं विभिन्न वस्तुएं ले के जिसमें चांदी से मढ़े नारियल, सुपारी, हल्दी मिठाई, फल, और वस्त्र इत्यादि होते हैं. वधु का पिता अपनी सामर्थ्य के अनुसार नकद राशि भी भेंट में देता है. इस अवसर पर वर के परिवार की महिलाएं गाती हैं-

सो इन नाऊ बमनन ने
हीरा मोरो ठग लओ
हीरा मोरो ठग लओ
नगीना मोरो ठग लओ
सो इन नाऊ बमनन ने..
पहले कहत हम हंतिया जो दैबि
सो अंकुश दै कें बिलमा लय राजा बनरे
सो इन नाऊ....

छेई माटी- विवाह की एक प्रमुख रस्म होती है 'छेई माटी' की. इस रस्म में घर की महिलाएं सात छोटी-छोटी टोकरियां ले के घर के पास स्थित किसी भी मंदिर या खेत में जाती हैं और वहां धरती का पूजन कर के मिट्टी खोदती हैं. ये मिट्टी इन टोकरियों में भर के घर लाई जाती है. इसी मिट्टी से पांच चूल्हे और हवन कुंडी बनाई जाती है. मंडप के दिन इन्हीं चूल्हों पर 'मायें' बनती है और हवन कुण्डी फेरों के समय इस्तेमाल की जाती है. छेई माटी के लिये जाते समय महिलाएं गाती हैं-

निहारो न मोहन मोरी ओर
नज़र लग जैहै...
एक तो चंद बदन उजियारी
दूजे अपने पति खां प्यारी....
तनक नज़र के लगतन
सुध बुध हिये न रैहै.....

लगुन, छेई माटी के बाद, बारी आती है मंडप की. आंगन के बीचों बीच चार हरे बांस गाड़ के उसके ऊपर भी बांस बिछाए जाते हैं जिन पर पलाश के पत्तों की छाया की जाती है. आगे के सभी वैवाहिक कार्य इसी मंडप में किये जाते हैं. मंडप के बीच में लकड़ी का 'खम्भ' गाड़ा जाता है.

हरे बांस मंडप छाये
सिया जू खां ब्याहन राम आये
जब सिया जू की लिखत लगुनियां
रकम रकम कागज आये,
सिया जू खां राम.....

तेल चढ़ना– मंडप के नीचे वर/कन्या को तेल चढ़ाने की रस्म होती है. इसे घर की महिलायें और पांच कन्याएं पूरा करती हैं.

चढ़ गओ तेल फुलेल, छिटक रहीं पांखुरियां
को लाओ तेल फुलेल, को लाओ पांखुरियां,
तेलन ल्याई तेल-फुलेल, मालिन ल्याई पांखुरियां....
भाभी ने तेल चढ़ाओ, वीरन राये बैहदुलिया....

चीकट– बुंदेलखंड के विवाह में भात और चीकट का विशेष महत्व है. विवाह के पहले वधु की मां अपने भाई के पास भात ले के जाती है और बेटी के लिये चीकट लाने का न्यौता देती है. मंडप के दिन मामा चीकट ले के आता है, जिसमें कपड़े, गहना, फल, मिठाई और अन्य खाद्यान्न होते हैं.

हरदौल लला मोरी कही मान लियो
हो हरदौल लला....
कहूं भूला परै कहूं चूका परै
तौ संभाल लियो हो हरदौल लला....

द्वाराचार– विवाह के दिन जब बारात दरवाज़े पर आ जाती है तो सबसे पहले द्वाराचार की विधि होती है जिसमें कन्या का पिता दरवाज़े पर ही वर का तिलक, पूजन आदि करता है.

बने दूल्हा छवि देखो भगवान की,
दुल्हन बनी सिया जानकी.....

समवेत स्वरों में गाया जाने वाला ये गीत बहुत मधुर लगता है.

चढ़ाव– मंडप में कन्या को बिठाने के बाद वर पक्ष अपने साथ लाया विभिन्न सौगातें वधु को चढ़ाता है जिसमें वस्त्र, गहने, प्रसाधन, चप्पल आदि सभी सामग्री होती है.

तुम आईं चढ़ाये के चौक
बेटी राजन की.....
समार-समार पग धरियो
बेटी राजन की...

पाणिग्रहण एवं भांवर– विवाह की सबसे महत्वपूर्ण यही विधि होती है जिसमें अग्नि के सात फेरे लिये जाते हैं. इसी विधि में बेटी के माता-पिता बेटी के हाथ हल्दी से पीले करके, उसके हाथ को वर के हाथ में सौंपते हैं. पाणि यानी हाथ और ग्रहण यानी स्वीकार करना. इसी हाथ सौंपने की विधि से इस संस्कार का नाम पाणिग्रहण पड़ा.

राम लखन ब्याहन खों आये,
सीता जनक दुलारी वे, हां हां वे हूं हूं वे....
फर्श गलीचा बिछे अनेकन,
धूम मचीऐ भारी वे हां हां वे हूं हूं वे.....

विदाई- रात्रि में पाणिग्रहण के बाद सुबह कुंवर कलेवा, बाती मिलाई के बाद विदाई की घड़ी आती है. बेटी की विदाई अपने आप में बेहद करुण दृश्य उपस्थित करती है. ऐसा कोई नहीं होता जिसकी आंखें विदा के समय नम न हो जाती हों.

राजा ससुर घर जाती हैं बेटी
करके सोलह सिंगार मोरे लाल....
दम दम दमके माथे की बिंदिया,
ऊसई गरे कौ हार मोरे लाल.....

एक और गीत है जिसे सुनते ही आंखें स्वत: ही छलकने लगती हैं-

कच्ची ईंट बाबुल देहरी न धरियो,
बेटी ने दियो परदेस मोरे लाल.....

इस प्रकार तमाम छोटे-बड़े रस्मोरिवाज़ पूरे करते हुए वैवाहिक अनुष्ठान सम्पन्न होता है.

बाजरे का पौधा

मालिनी गौतम

गमले में अपने आप ही उग आया था
बाजरे का पौधा
हां, कोई भला क्यों कर उगाएगा
बाजरे की फसल गमले में?
माना कि मिलेट ईयर घोषित हुआ है यह बरस
मगर इसका मतलब यह तो नहीं
कि गमले में ही उगा लिया जाए बाजरा.
ये तो चिड़िया, कबूतर, गिल्लू के लिए
बगीचे में लटका हुआ था
बाजरे से भरा सकोरा,
वे कुछ खाते और कुछ गिराते
कुछ दाने वहीं गिर गये आसपास रखे गमलों में
और उग आए बाजरे के पौधे.
पहले पहल तो मैं घास ही समझ बैठी थी उन्हें
लेकिन जब निकल आईं बालियां
तो मन न जाने कैसी अद्भुत खुशी और संतोष से भर
उठा.
उन दो-चार बालियों से कोई अन्न का कोठार
तो भर नहीं जाना था
मगर मैं फिर भी हुलस-हुलसकर देखती रही
उन बालियों में दानों का भरना
बालियों का पकना
जब एक रात तेज़ बारिश से झुक गईं बालियां
तो पतली डंडी का सहारा भी दिया
सब हंसते रहे यह कहकर
कि अब इन चार चपटी दानों का
आटा भी पिसवाओगी क्या?
नहीं, मैं बस सहेज लूंगी उन्हें
लगा लूंगी सिर माथे पर
जतन करुंगी उन्हें
कुछ अधिक वक्त सहेजने का.
किसान नहीं हूं मैं
मगर अपने चार पौधों से प्रेम था मुझे
उन दानों को फिर डाल दूंगी माटी के सकोरे में
खिला दूंगी दूर देस से दाना चुगने आए पंछियों को
मैं भीग जाऊंगी अपनी फसल के प्रेम में
यह सोचते हुए कि
किसान कितना भीगता होगा
अपने दूर तलक लहराते हुए
हरे छम खेतों के प्रेम में.

याद आ गया गांव

सुनील श्रीवास्तव

गांव आ गया,
याद आ गया सब कुछ हमको,
पटरी,करिखा, दुद्धी, घरिया याद आ गया.
सत्ती माई और डिह बाबा खोज रहा हूं,
अम्मां की तुलसी, कक्का का हुक्का याद आ गया.
संगी साथी पता नहीं अब गये कहां सब,
उनके साथ कबड्डी, छिपा-छिपउल याद आ गया.
दासपार का इनरा अब है नहीं लउकता,
दाल-भात का सना कटोरा याद आ गया.
समरसेट से सींच रहे हैं खेतों को अब,
गड़ही ,पुरवट, मोट, दोन सब याद आ गया.
धान कूटती सुबह मशीनियां दरवज्जे पर,
ओखरी जांता मूसर चकरी याद आ गया.
फसलों का वह दौर न जाने कहां खो गया,
जोन्हरी,सांवां ,साठी,जौ का याद आ गया.
दारू पीते, गाली देते, सड़कों पर लड़कों को देखा,
ऊखी का रस, मटर घुघुरिया याद आ गया.
पक्के घर, पक्की सड़कें घर-घर में बिजली ,
अपनी मड़ई, मेंड़ खेत की, लालटेन भी याद आ गया.
ट्रैक्टर लदी लाश के पीछे,कार और फटफटिया देखा,
राम नाम है सत्य और मुर्दहिया पैंड़ा याद आ गया.
आया यह चुनाव तव हमको,
झोपड़ी, दीपक, हल में बैल याद आ गया.

तुम्हारी आंखों में छुपे मसौदे

मुकेश इलाहाबादी

दुनिया कि
सारी भाषाएं सीख भी लूं
तो भी नहीं पढ़ सकता
तुहारी आंखों में छुपे
मज़मून को.
तुम्हारी आंखों की जादूई लिपि
जो सबसे अलहदा है.
यही वजह है
दुनिया की किसी भी भाषा के वर्णाक्षर
नहीं मैच खाते
कूट भाषा में लिखी मुस्कराहट के
मसौदे से
सिवाय, अंधो की ब्रेल लिपि के
(उंगलियों के स्पर्श से पढ़ी जा सकने वाली लिपि)
लिहाज़ा मेरे पास दो ही विकल्प रह जाते हैं
तुम्हारे मौन
तुम्हरी हंसी
तुम्हारी आंखों में छुपे मसौदे को पढ़ने के
पहला - या तो तुम खुद बता दो क्या लिखा है
या फिर , मेरी उंगलियों को इज़ाज़त दो
छू कर पढ़ सकूं क्या लिखा है?
तुम्हारी खूबसूरत पलकों पे
तुम्हारे नाज़ुक होठों पे
या कि तुम्हारी हंसी
और मौन में.

एक अनुत्तरित प्रश्न

निशा कुलश्रेष्ठ

तुम दिन भर करती क्या हो?
हां, मैं सचमुच दिन भर करती भी क्या हूं?
मैं एक सामान्य सी गृहणी
सुबह से शाम तक
जो बिना किसी शुल्क के बनाये रखती है
संतुलन
सारे परिवार का,
मैं भला करती भी क्या हूं?
मैं करती क्या हूं
सुबह उठती हूं और चकरघिन्नी सी
सारे घर को संभालती हूं यहां से वहां तक,
इस्तरी किए कपड़े जिन्हें निकाल कर
तुम आसानी से पहन जाते हो
अपने दफ्तर जाते हुए.
और महसूसते हो खुद को लार्ड साहब
उस वक्त मैं समेट रही होती हूं
एक लम्बी सांस भर कर
तुम्हारे और बच्चों के उतर कर फेंके
इधर उधर कपडे.
मैं करती ही क्या हूं?
हम बाजार जाते हैं
तुम बटुए का बोझ उठाये चलते हो
और मैं एक खाली झोला मुट्ठी में बांधे
तुम्हारे पीछे पीछे हो लेती हूं
तुम चुकाते हो कीमत
उन सभी जरुरी सामानों की
जो जीने के लिए हर महीने घर आने जरुरी हैं
और मैं उस भरे हुए झोले का बोझ उठाये
चल पड़ती हूं संग तुम्हारे.
मैं करती क्या हूं
सर्दियों में तुम्हारी पसंद के साग
और मक्के बाजरे की रोटी
रसोई में बनाती हूं, तुम्हें बना कर खिलाती हूं

(स्केच:अनु प्रिया)

और तुम्हे खाते हुए देख कर सुख पाती हूं,
मैं करती क्या हूं
उंगलियाँ दुखती हैं न तुम्हारी
जब तोड़ते हो गुड की डली कभी अपने हाथों से
जब ठण्ड में गुड़ की टूटी डेलियां हाथ में पाते हो
गर्म दूध के संग उस मिठास को पाते हो.
मैं करती ही क्या हूं
स्कूल से आये बच्चों की दिन भर की
धमाचौकड़ी से लेकर उनके होमवर्क कराना
पल पल उनकी और तुम्हारी जरूरतों का
ध्यान रखना

मैं करती ही क्या हूं
कि शाम को जब कभी तुम
समय पर घर नहीं पहुंचे
तुम्हारे आने पर रो रो कर झगड़ती हूं
कहां रहे इतनी देर, क्यों देर हुई
एक फोन कर देते,
पर इस झगडे के पीछे मेरी चिंता को
तुम कभी नहीं समझ सके
मैं करती ही क्या हूं
ऐसे तमाम प्रश्न हैं जिनका उत्तर
तुम्हें तब मिल गया होगा
जब पिछले दो महीने से एक बड़े ऑपरेशन से
गुजरने के बाद
मैं बिस्तर पर हूं
और तुमने हर उस काम के लिए बाई लगायी
हुई है
जो जीने के लिए जरुरी है,
महीने के अंत में
खाना बनने वाली को
घर की साफ सफाई करने वाली को .
कपडे धोने वाली को, प्रेस करने वाले को
उनके पेमेंट दिए होंगे
उसके बावजूद भी
जहां-जहां तक नजर जाती है मेरी
मैं देख रही हूं
मेरा घर बिखर गया है.
कीमती साज सज्जा पर धूल उतर आई है.
टेबिल क्लॉथ कब से खिसक कर आड़ा-
तिरछा सा
बस पड़ा है टेबिल पर,
सोफे पर करीने से रखे कुशन जो अब पड़े हुए
से दिखते हैं
फ्रिज भर गया है बचे हुए खाने पीने से
तुम्हारी ख़ामोशी बढ़ गयी है पहले से भी
ज्यादा
(आखिर मेरी बक बक जो बंद है इन दिनों)
छोटी बेटी के चेहरे पर
एक प्रश्नवाचक चिन्ह चस्पां है
मम्मा आप कब ठीक हो जाओगी
क्या उम्मीद करूं??
कि अब तुम को ये उत्तर मिल गया होगा -
कि आखिर मैं दिन भर करती क्या हूं ?

(काश कि एक गृहणी को भी सरकार ने
तनख्वाह तय की होती)

प्रेम और जंगल

मधु सक्सेना

मन के न जाने किस जंगल में पलाश फूला
कि झर गई सब विषाद की पत्तियां
सुर्ख हो गए सपने.
अलबेले से सभी रंग आ गए
फागुन से बतियाने.
इन आंखों में गमक गया गुलाब
चम्पा से गालों पर थिरक गया अमलतास,
पांव-पांव चली पुरवाई
लछमा की हंसी से
गूंज उठा जंगल.
प्रेम फिर लिखने लगा
अपनी अमिट परिभाषा,
कभी आंचल की गांठ से बंध गया
तो कभी जूड़े में लगे फूल में अटका
बांसुरी की धुन पर थिरकता हुआ
हर साज़ और आवाज़ में सज गया.
बदलेंगे मौसम
पेड़ गीता का ज्ञान देते हुए
उतारेंगे अपने पीत वत्कल
खाद बनने को आतुर
पीले पात धरती को गोद में मिट जायेगें
फिर उगने के लिए.
बदलते हुए मौसमों में भी
नही बदलेगी
प्रेम की कहानी कहती
कबीर, वारिसशाह और ग़ालिब की
बुलंद आवाज़ ....

नैनं दहति पावकः

स्केच: सुभाष शर्मा

सुधा गोयल

अभी कुछ देर पहले ही मेरी मृत्यु हुई है. मैं अपना शरीर छोड़कर धूम्ररेखा की तरह ऊपर उठ रहा हूं. हवा के झोंकों से कभी इधर कभी उधर झूम जाता हूं. मुझे भय भी लगता है, पर तभी ध्यान आता है कि भय कैसा? अब तो मैं मुक्त हूं. आजाद हूं. "नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि,नैनं दहति पावकः". मैं खुश हूं. अपनी इस आजादी का जश्न मनाना चाहता हूं, पर कैसे? अपनी खुशी मैं किसी के साथ व्यक्त नहीं कर सकता. किसी के साथ मिलकर नहीं मना सकता, केवल महसूस कर सकता हूं. यह महसूस करना भी कितना सुकून भरा है. शरीरधारी व्यक्ति इस सुकून को समझ नहीं सकता.

चिंता मुक्त होना भी एक सुकून है. अब न मुझे समाज की चिंता है, न परिवार की. न अब मुझे कोई बीमारी है, न डाक्टर के पास जाना है, न दवाइयां खानी हैं, न इंजेक्शन लगवाने हैं. जब देह ही नहीं है तब उससे संबंधित दुःख कैसा?

अब न घर की जरूरतों के लिए थैला लटकाए बाहर जाना है और न पेंशन लेने आफिस. अब तो कोई काम ही नहीं है. सारे काम शरीर के थे. सारे सुख-दुःख भी शरीर के थे. शरीर भी पुराने कपड़े जैसा जर्जर हो गया था. उसे ठीक रखने के लिए समय-समय पर पैच लगाने पड़ते थे. ."

कितनी बार चीर-फाड़ करानी पड़ी. देह दुखती तो मुंह से आह निकल ही जाती.

खैर, मैंने सोचा कि आज जश्न मनाऊंगा तो मनाऊंगा ही. लेकिन अकेले-अकेले बात कुछ जमती नहीं, पर जमानी तो पड़ेगी ही. मैंने निश्चय किया है कि मैं अपनी देह के ऊपर आंगन में स्थित हो सारे क्रियाकलाप देखूं. मुझे कौन कितना चाहता था तथा कौन कितनी घृणा करता था, सब पता चल जाएगा. सबके मुखौटे उतर जाएंगे. पर यह क्या? पत्नी के पास तो फूटी कौड़ी भी नहीं है, क्रिया कर्म कैसे करेगी? मैंने भी कितनी बड़ी ग़लती की. कुछ पैसे उसके खाते में डाल देता या घर ही लाकर रख देता. दस लाख पी.पी.एफ.में ही हैं. मैंने तो किसी को अपना उत्तराधिकारी भी नहीं बनाया है. उन पैसों के विषय में कोई जानता भी नहीं है. वह तो बैंक में ही रह जाएंगे. क्या मैं पुनः शरीर में प्रवेश कर कुछ पैसे पत्नी को दे सकता हूं? चलो कोशिश करता हूं.

पर यह क्या? प्रवेश कहां से करूं? प्रवेश के सभी रास्ते अवरुद्ध हो चुके हैं. सभी जगह रुई ठूंस दी गई है. मुंह में तुलसी दल भरे हैं. गुप्तांगों में आटे के पिंड हैं. वायु आने जाने का कोई भी मार्ग खुला नहीं है. खैर,चलो अब तो तमाशा और भी रोचक होगा. देखता हूं सारी व्यवस्था कैसे होती है? अब आया ऊंट पहाड़ के नीचे. पत्नी माथे की बिंदी और मांग का सिंदूर पहले ही पोंछ चुकी है. विलाप करते हुए उसने कांच की चूड़ियां भी तोड़ डाली हैं. सिर ढ़के मुख नीचा किए निरीह सी बैठी है. कैसी कुम्हला गई है. उसके चेहरे का सारा तेज झुलस गया है. कितनी दयनीय लग रही है. बीच-बीच में हिचकी लेती है, सारी देह हिल जाती है. रोते-रोते कह रही है - "मैंने लाख कोशिश की,अपनी सामर्थ्य भर इलाज कराया, लेकिन बचा न सकी. मेरे भाग्य में वैधव्य ही लिखा था

मुझे पत्नी पर तरस आता है पहले ही कौन सधवा थी. माथे पर बिंदी लगाने या मांग में चुटकी भर सिंदूर लगाने से कोई सधवा नहीं हो जाता पर समाज का मानना यही है. मैं इसमें क्या कर सकता हूं ? जब भी कोई रिश्तेदार औरत आती है पत्नी से गले मिलकर रोती है. यह रोना थोड़ी-थोड़ी देर रुक -रुक कर चल रहा है. मेरी मृत देह जमीन पर एक चादर बिछाकर उस पर लिटाई गई है. एक चादर ऊपर से ढकी है. पत्नी गले का मंगलसूत्र और हाथों की सोने की चूड़ियां उतार कर दामाद को दे रही है -"लल्ला, अपने ससुर की अंतिम यात्रा की तैयारी करो."

"मम्मीजी ये सब अभी अपने पास रखो. मैं व्यवस्था कर रहा हूं." वह लेने से इंकार करता है.

"अभी रखो. वैसे भी ये सब मेरे किस काम के हैं. दामाद का पैसा ससुर के अंतिम संस्कार में लगे ये अनुचित है."

"मैं बाद में ले लूंगा. अब इसी काम के लिए बाजार जाना उचित नहीं लगता. मैं साले साहब से बात करता हूं."

पत्नी चुप कर जाती है. उसे दामाद की बात जमी है. मैं भी देख रहा हूं कि कौन क्या-क्या करता है. लड़का पांच सौ की गड्डी निकाल कर दामाद को थमाता है. मुझे ताज्जुब हुआ. जीते जी जिसने कभी मुड़ कर मेरी तरफ नहीं देखा वह नोटों की गड्डी निकाल रहा है. मैं सब समझता हूं. मेरे जाने के बाद मेरा सारा पैसा निकाल लेगा. मेरे आफिस वालों से इसीलिए संपर्क बनाए रखता है. मैं इसकी नस-नस से वाकिफ हूं. मां की ओर हमदर्दी के चार जुमले उछाल कर मकान भी हथिया लेगा.

तभी मेरी सोच दूसरी ओर मुड़ती है. अब सोचता हूं कि मैने ही इसके लिए क्या किया? इसे पैदा करने के बाद इससे कभी सीधे मुंह बात ही नहीं की. कभी प्यार से सिर पर हाथ नहीं रखा. कभी सुख-दुःख नहीं बांटा. यदि उसने भी दूरियां बना लीं तो इसमें इसका क्या कसूर? वह अपने पुत्र होने का फर्ज तो निभा रहा है. मैं अपने पिता होने का फर्ज नहीं निभा पाया.

पास पड़ोसी और रिश्तेदारों का आना जारी है. स्थानीय लोग सूचना मिलते ही आ पहुंचे. हां बाहर से आने वालों को वक्त लगेगा. लोग आपस में खुसर-पुसर कर रहे हैं. मैं उनके ऊपर वायुमंडल में स्थित हूं. यह विनोद ऐसे भाग दौड़ कर रहा है जैसे इसी का बाप मरा हो. मेरा लाखों रुपया तो इसी के पास है जिसकी कानों कान किसी को भनक भी नहीं है. साला सब डकार जाएगा. मेरे रुपए से ही उसने अपना मकान खड़ा कर लिया है.

यह मेरे पड़ोसी हैं, जिनसे रोज आते-जाते दुआ सलाम होती रहती थी. कभी सुख-दुख में हाल-चाल पूछ लेते थे, वरना अपने काम से काम. हां सुबह-सुबह पार्क में टहलते समय खूब ठहाके लगते थे. राजनीति धर्म या देश के वर्तमान हालात पर खूब चर्चा होती. खूब जिंदा दिल थे मसूर साहब. उनकी कमी खलती रहेगी.

यह दूसरी तरफ चार-पांच व्यक्ति एक ग्रुप में खड़े हैं. यह मेरे ऑफिस के सहयोगी हैं. यह गुप्ता का बच्चा ऐसे कामों में सबसे आगे रहता है. आज भी सारे कार्यक्रम का सूत्रधार वही है. कैसी अकड़ से कह रहा है कि मैं अपने दस साथियों को तो श्मशान तक पहुंच चुका हूं मेरे कंधे कितने मजबूत हैं.

"ठीक कहते हो गुप्ता. क्या पता कल तुम्हें श्मशान पहुंचाने को कोई कंधा ही ना मिले", राजेश ने चुटकी ली.

आगे बढ़ता हूं यह मेरे भाई बांधव हैं मुझे मन ही मन गालियां दे रहे हैं और मेरी बखिया उधेड़ने में लगे हैं जिसमें मेरा पुत्र और दामाद भी शामिल हैं. पुत्र कह रहा है- "हद दर्जे के कंजूस थे. मां को कभी दो पैसे नहीं दिए. मां हमेशा खाली हाथ पैसे-पैसे को तरसती रही. अभी भी खाली हाथ बैठी है. पता नहीं वक्त कैसे गुजरेगा.

"जब तक जीवित रहा कभी इसे पल भर चैन नहीं लेने दिया. सुख नाम की चीज इसके जीवन में कभी नहीं आई. केवल दुख ही ओढ़ा-बिछाया. बेचारी ने कभी न ढंग से खाया न पहना. केवल रात दिन प्रतीक्षा करती रही. आधी-आधी रात को जुआ खेल कर खा-पी कर घर लड़खड़ाता लौटता. लौट कर उसे गालियां बकता, वह बेचारी बकरी सी मिनमिनाती रहती. हमने तो इसीलिए इससे अपने ताल्लुकात कम कर दिए." यह मेरा बड़ा भाई है.

"मैं भी अपने बच्चों के साथ अलग रहने लगा रोज की चिक-चिक से तो जान छूटी," यह मेरा सपूत था.

"शादी के प्रारंभिक दिनों में हम झूठ बोलते. किसी काम का बहाना बनाते. ढूंढ कर लाने का ढोंग करते. आखिर झूठ को एक दिन बेपर्दा होना ही था. एक दिन भौजी ने कहा- "भैया अपने भाई की कमियां कब तक छुपाओगे? अब बहाने बनाने बंद भी करो, मैं सब जान गई हूं." इसने तो हमारी गर्दन कभी ऊपर उठने नहीं दी. शर्म से झुकी ही रही. भौजी के प्रति हम भी कम अपराधी नहीं हैं. ऐसे व्यक्ति को शादी नहीं करनी चाहिए थी. लेकिन मां भविष्य देख रही थी कि शायद संभल जाए लेकिन जीवन पूरा हुआ पर वह नहीं संभला," यह मेरा अनुज था.

"अब मम्मी का शेष जीवन चैन से कटेगा", ये मेरे बेटी और दामाद हैं.

यानी मैं सबकी आंखों में खटकता रहा. बस मेरे सामने ही किसी को कुछ कहने की हिम्मत नहीं थी. आज मैं नहीं हूं तो सब बातें बना रहे हैं. जब इस औरत को रोटी खिलाएंगे तब जानूंगा. इन सबके बूते पर ही अकड़ दिखाती थी.

वायुमंडल में स्थित होते हुए भी मैं क्रोधावेश में कांपने लगता हूं और रुई के गोले की तरह इधर-उधर घूमने लगता हूं. यह मुझे क्या हो रहा है. मैं तो सुख-दुःख से ऊपर हूं. शान्त हूं. फिर ऐसे विकार क्यों आ रहे हैं?

मैं वहां से हटकर उधर चल देता हूं जहां मेरी प्रियतमा नत मुख किए बैठी है. सबकी निगाह में वह मेरी धर्म बहन है. इससे राखी बंधवाता हूं. यह सिर्फ समाज की आंखों में धूल झोंकने के लिए था. वह भी बैठी सोच रही है- "चलो अच्छा हुआ जो माथुर का बच्चा मर गया. पीछा तो छूटा. कंजूस तो इतना कि कुछ मत पूछो. बस फोकट में देह चाहिए. देने के नाम पर सब कुछ पत्नी के नाम पर छोड़ गया होगा. यह नहीं हुआ कि दस-पांच लाख मेरे नाम कर देता. ऐसे आदमी का क्या दुःख मनाऊं? पता नहीं क्यों इसकी मीठी-मीठी बातों में आ गई."

दृश्य बदलता है. मेरी बहन आ गई है. कपड़ा हटाकर मेरा चेहरा देखती है. फिर अपनी भाभी के गले मिलकर रोती है. पत्नी खूब बिलख-बिलख कर रो रही है. मेरी समझ में नहीं आ रहा. मैंने प्रताड़ना के अलावा कोई ऐसा सुख इसे नहीं दिया था जिसे याद करके रोती. बहिनों को भी कोई खास मान-सम्मान नहीं दिया. बस खून का रिश्ता मात्र निभाता रहा. हां वे जरूर उसकी हिमायती और मेरी विरोधी रहीं, इसीलिए मैं उन्हें पसंद नहीं करता था. शायद रोना भी एक परंपरा है जिसे निभाना जरुरी है.

पत्नी जिसे मैंने पत्नी कम फालतू का सामान अधिक समझा, कभी उसके मान-सम्मान की चिंता नहीं हुई. किसी के सामने भी डांट या पीट देता, जिसमें मैं अपनी मर्दानगी समझता. उसका मुझसे अधिक पढ़ा-लिखा होना ही सबसे बड़ा दोष था. वह जितनी पढ़ी है उतनी ही धीर-गंभीर है. मैं उतना ही कृतघ्न,उच्छृंखल और कमीना. वह रात-रात भर जागकर मेरी सेवा करती. फल, दवाई, डाक्टर सब उपलब्ध कराती.अपने आप नहलाती, कपड़े धोती, अपने हाथ से खाना खिलाती, फिर भी मैं उसे शब्द-शरों से घायल किए बिना न रहता.

वह छाया सी मेरे साथ लगी रहती. जब केंसर के कारण मेरे गले में खाना जाना बंद हो गया तब वह फलों का जूस निकालती, शेक बनाती, सब्जियां उबाल कर पीसती, उसी में रोटी-पनीर सब मिला देती. मैं कमजोर न पड़ जाऊं इसीलिए पूरी खुराक देती. दूध-दही की कोई कमी न करती. सारा दिन फोन पर डाक्टरों से बात करती. मुझे दिखाने ले जाती. एक कंधे पर बैग, हाथ में फाइल और दूसरे हाथ से मुझे पकड़े रहती. बेटा फोन पर मां को घुड़कता- "ये क्या मां?आप अकेली पापा को लिए घूमती हैं".

वह उत्तर देती- "तो क्या हुआ? जब तक सांस तब तक आस. मेरे मन में यह तो अफसोस नहीं रहेगा कि मैंने ढंग से इलाज नहीं कराया. मैं अपनी तरफ से पूरी कोशिश कर रही हूं, बाकी ऊपर वाला जाने."

बेटी पूछती- "मम्मी,आप पापा को कैसे सह पाती हैं?"

"यानि मैं सांप हूं, विष उगलता रहता हूं, क्यों रहती है सांप के साथ? कभी मेरा विष तुझे चढ़ा नहीं?" मैं उसकी चोटी पकड़ कर खींच देता और कमर में एक लात जमा देता. बेटी मां की दुर्दशा देखकर रोने लगती.

"तू क्यों रोती है लाड़ो, जब मैं ही नहीं रो रही, ऊपर वाला सब देखता है."

स्केच: सुभाष शर्मा

ठीक कहती थी वह कि ऊपर वाला सब देख रहा है. उसने ऐसा देखा कि मैं बोलने के काबिल ही न रहा. कुछ सटकने लायक नहीं रहा. पल-पल अपनी मृत्यु का इंतजार करने लगा लेकिन उसने मेरे इलाज में कोई कसर नहीं छोड़ी. सारे रिश्तेदार और पड़ोसी जानते हैं. उसका मान सबकी निगाहों में बढ़ गया है. उस जैसी पतिव्रता स्त्री हो ही नहीं सकती. फिर मेरे जाने पर बिलख-बिलख कर रो रही है. बेटे ने भी कंधे से लगाकर चुप नहीं कराया है और न यह कहा कि तुम चिंता मत करो, मैं हूं न. पुत्र ने कुछ आदतें मेरी भी पायी हैं. कहता भी कैसे? मरी बिल्ली कोन गले में बांधे?

फिर भी मैं यह जानने को आतुर हूं कि उसके रोने का क्या कारण है. उसकी गरीबी? नहीं, स्वाभिमानी व्यक्ति कभी गरीब नहीं होता. उसने मुझसे कभी एक पैसा नहीं मांगा. वह स्वाभिमानी है. भूखी रह लेगी, मेहनत कर लेगी, लेकिन किसी के आगे हाथ नहीं फैलाएगी. वह कहती हैं- 'जिसने पेट दिया है वह रोटी भी देगा, वह अपने बच्चों को भूखा नहीं सुलाता.' मैं जानता हूं कि मैंने उसके लिए कुछ नहीं छोड़ा, यह उसके रोने की वजह नहीं हो सकती. मैं उसे भिखारिन के रुप में देखना चाहता था. यह इच्छा तब भी पूरी नहीं हुई, अब भी नहीं होगी. लेकिन रोने का कारण?

मैं उसके मन में गहरे तक उतर जाता हूं. वह चाहती थी कि पहले मैं मरती और मैं पत्नी के बिना अभावों में तड़पता पल-पल जीता इसीलिए उसने इतनी सेवा कर बचाना चाहा. यह उसकी हार का रोना था, इसीलिए वह मेरे जाने से दुखी थी.

मुझे मरे चार घंटे हो गए हैं. लगभग सभी नाते-रिश्तेदार आ गए हैं. अब मुझे नहलाया जा रहा है. पंडित आ चुका है. नाई, पुत्र का सिर मूंड रहा है. सफेद वस्त्रों में वह मेरे पास खड़ा है. तिलक लगाकर मुझे फूलों से ढंक दिया गया है. सफ़ेद कफ़न मुझे ओढ़ा दिया है.

मेरा चेहरा अभी खुला है. रिश्तेदार चादर ओढ़ाकर प्रणाम कर रहे हैं. पौत्र व बहुएं पैर छू रही हैं. पत्नी ने अपने सभी सुहाग चिह्न उतारकर मेरी छाती पर रख दिए हैं. जैसे कह रही हो कि आज से मेरा तुम्हारा नाता खत्म. जिन सुहाग चिन्हों के नाम पर तुम मुझे बांधे रहे, मैं आज तुम्हें उनसे मुक्त कर स्वयं भी मुक्त हो रही हूं. प्रभु अगले जन्म में तुम्हें सद्बुद्धि दे और मेरा तुम्हारा यही सातवां जन्म हो.

एक बार फिर रोने के स्वर तेज होते हैं. काठी बांधी जा चुकी है. घंटे घड़ियाल बज रहे हैं. कुछ हाथ काठी उठाकर कंधे पर रख लेते हैं. पुत्र सबसे आगे हैं. सब राम नाम सत्य है कहकर आगे बढ़ रहे हैं. मैं उनके साथ-साथ हवा के झोंकों पर सवार श्मशान की ओर जा रहा हूं. चिता तैयार है. भंगी मेरे ऊपर पड़ी चादरें उतार लेता है. मुझे चिता पर लिटा दिया जाता है. श्मशान का पंडित कुछ मंत्र पढ़ता है और जल छिड़कता है. मेरे ऊपर लकड़ियां रख दी जाती हैं. पंडित एक लकड़ी का सिरा घी में डुबोकर जलाता है. मुझे भय सताने लगता है. मैं अब नष्ट हो जाऊंगा लेकिन तभी आत्मा आभास कराती है- तुम जीवन मरण से दूर हो. नैनं दहती पावकः और चिता धू -धूकर जलने लगती है. एक धूम्र रेखा तेजी से उठकर ब्रह्मांड में विलीन हो जाती है.

आल्हा गायक बंदू कुम्हार

बाबूलाल दाहिया

अपने गांव के भूले बिसरे लोगों में एक नाम अक्सर स्मरण हो आता है वह है बंदू कुम्हार का. बंदू जी अद्भुत आल्हा गायक थे. वे ढोलक के थाप पर घंटों गाते रहते. आल्हा गायकी एक वीरछंद काव्य है जो साहित्य की एक अत्यंत सरल विधा भी है. उसमें हमारे कई कवि मित्रों ने अपने खंड काव्य लिखे हैं. परंतु मौखिक परंपरा में हमारे अपढ़ अनाम गायकों ने 12वीं सदी से पिछली शताब्दी तक किस प्रकार इस छंद विधा को अपने कंठ में बसा कर जीवित रखा, आश्चर्य तो यह है. हो सकता है इस मौखिक आल्हा गायकी के मूल में टीकमगढ़ के भाट कवि श्री जगनिक जी की पंक्तियां ही रही हों जो बुंदेली से बघेली में अनूदित हो गई हों? पर आश्चर्य तो यह है कि वे विगत 7 सौ वर्षों तक वाचिक परंपरा में लोक कंठ में रची बसी रहीं.

यद्यपि पचास के दशक तक तमाम बड़े-बड़े ग्रामों में स्कूल खुल गए थे इसलिए पढ़े-लिखे युवाओं के हाथ में आल्हा काव्य की नारायणदास, सीताराम और मटरूलाल अख्तर आदि रचनाकारों की अनेक पोथियां आ गई थीं, परंतु इसके पहले प्रत्येक गांवों में ऐसे अनेक आल्हा गाने वाले गायक होते थे जो ढोलक के थाप के साथ गाकर आल्हा गीत सुनाया करते थे. उनकी वह राजपूतों के शौर्य को बखान करती शैली बड़ी ही मनमोहक और रोमांच पैदा करने वाली होती थी.

हमारे गांव में भी यह आल्हा गायकी प्रचलन में थी. जब मैं लड़कपन की याद करता हूं तो एक धुंधला सा चेहरा आज भी उभर आता है जिनका नाम ऊपर ही बता चुका हूं. कजलियों के त्यौहार में समस्त गांव के बालक, वृद्ध, युवा सभी तालाब के समीप कालिका देवी मंदिर परिसर में एकत्र हो कजलियां मिलन समारोह मनाते लेकिन उसके पहले युवाओं की कबड्डी और बंदू जी का आल्हा गायन होता. वे ढोलक के साथ घंटों तक उस आल्हा गीत को इस प्रकार गाते थे कि युवाओं के भुजाओं में जोश का संचार हो उठता. लोगों को ऐसा लगने लगता जैसे वे कालिका मंदिर परिसर में नहीं बल्कि 12वीं सदी के उसी काल खंड में उरई के मैदान में खड़े हैं जहां पृथ्वीराज और आल्हा ऊदल की सेना आमने-सामने लड़ने के लिए तैयार है.

बंदू जी की गायकी की प्रथम पंक्ति जो मुझे याद है वह पूर्णतः लड़ाकू सामंती व्यवस्था पर आधारित थी. उसमें आल्हा-ऊदल का कोई चाकर घोड़ों की सेवा करने वाले चरवाहों को आवाज दे रहा है. परंतु बाद में वह वाचिक परंपरा की गायकी पृथ्वीराज से युद्ध तक पहुंच जाती थी. खेद तो यह है कि उस समय मेरी अवस्था सीमित समझ वाली ही थी वर्ना उस समस्त गायकी को ही लिपिबद्ध कर लेता. लेकिन किसी विद्वान का यह कथन कितना यथार्थ है जिसमें उनने कहा है कि "अगर आप के बीच से कोई बुजुर्ग गुजर जाता है तो यह समझना चाहिए कि आप की एक चलती फिरती लाइब्रेरी ही चली गई."
सचमुच मेरे गांव की अनेक चलती-फिरती लाइब्रेरियां चली गईं हैं लेकिन इस लाइब्रेरी की, गायकी की कुछ पंक्तियां अभी स्मरण में शेष हैं जिन्हें आपके साथ साझा कर रहा हूं. अल्हैत बंदू जी घंटों गाया करते थे. 70 वर्ष पहले सुने इस गीत की ये दो-चार पक्तियां ही अब स्मरण में बचीं हैं-

चरवा चरबा कह गोहराबय,
सारे चरबा होस मुंह बोल.
कोऊ बछेड़ा लइआबा,
कोउ पोछा पटोरन पीठ.
रोमन रोमन मोती गुह,
जेमा हीरा बयालीस लाग.
अस्सी रूपइया कय कलगी,
माथे मही देत्या बधाय.
लील क कण्ठा ओखे गरे बांध दे,
घोड़ा डीठ मार न रे जाय.
धउ लइजइहे बेटा आमरित लोकय
धउ लइजइहे पताल.
सान महोबे कय रखिहे,
तय तो मदन ताल मइदान.
ना लइजइहउ अमरित लोकय,
ना लइजइहउ पताल.
मोरे पीठाहे वा बइठय,
दुइ दुइ हाथे करय तरवार.
लोहर मड़इया घन गरजय,
अउ जरय पमारिन लोह.
बारा बरिख का भा ऊदन,
जउन बइठे गढ़ाबय सांग.
टूटय सेहेरुआ जइसय भाठे क,
जइसय आसमान अरराय.
मउसी क बेटा मलखानां,
जउन कुरअन घिउ पी जाय.
पकड़ दतूसा हाथिन का रे
व तो फइक बगरे रे देय.
बारा बारिश भर कूकुर जियय,
स्वारा जियय सियार.
क्षत्री क जीना तीस बारिश,
जब भर बधय न ढाल तरवार.

मत काटो कोमल पंखों को

विनीता गुप्ता

मत काटो कोमल पंखों को,
मेरी भी इच्छाएं हैं.
उड़ने दो उन्मुक्त गगन में,
मेरी कुछ आशाएं हैं.
*
बाबुल के नंदन कानन की,
मैं तो हूं अनमोल कली.
बांहों के झूले में झूली,
प्रेम-प्यार से सदा पली.
कैद करो मत मेरे सपने,
मेरी भी सीमाएं हैं.
*
आशा की जब एक किरण ने,
देखा किसी झरोखे से.
पंखों से उड़ान भर कर मैं,
उड़ती रही भरोसे से.
मत देना तुम मुझे चुनौती,
मेरी भी क्षमताएं हैं.
*
तुंग शिखर चढ़कर हिम्मत से,
सागर पार उतर जाऊंगी.
अबला नहीं समझना मुझको,
सबला बन दिखलाऊंगी.
मत कहना कमजोर मुझे तुम,
मेरे साथ घटाएं हैं.

स्केच:अनु प्रिया

धूप, छांव और गर्मियां

संकलन: देवदत्त संगेप

डूबने वाले की उम्मीद ने दम तोड़ दिया
छांव की नहर में जब धूप के तिनके देखे.
लकी फ़ारुक़ी

*

इश्क़ तारों से ना महताब से दिलदारी की
रात ने धूप के बिस्तर पे सियेह-कारी की.
लकी फ़ारुक़ी

*

सफ़र में सोचते रहते हैं छांव आए कहीं
ये धूप सारा समुंदर ही पी न जाए कहीं.
मोहम्मद अल्वी

*

हैरानी से पूछ रहा था इक बच्चा नादान बहुत,
गर्मी के मौसम में ही क्यों आते हैं तूफान बहुत.
मनोज अहसास

*

छांव से ऊब कर लिखा सूरज
धूप में जल के चांदनी लिक्खी.
मुकेश शर्मा

*

पहले धूप के तन पे छाले आते हैं
तब जा के हम तलक उजाले आते हैं.
मनीष पाठक

ओस जब गिर गई फिसलते हुए
धूप हंसने लगी निकलते हुए.
मोहसिन आफ़ताब

*

धूप के फूल, खुशबुएं लू की
अल्ला अल्ला, महक रही है आग,
वो कटे खेत हों, या बागीचे
धूप फुदके, चहक रही है आग.
नूर मोहम्मद नूर

*

तेरी आंखों के दरीचे से निकलकर अक्सर
धूप चुपके से मेरे रुख पे चली आती है.
नीना सहर

*

अब्र की ओट से छलका है इधर धूप का रंग
है सुकूं बख़्श बहुत वक़्ते- सहर धूप का रंग.
नलिनी विभा 'नाज़ली'

*

जाड़ों में यूं फ़लक से दबे पांव आई धूप
एहसास भी हुआ न मिरे गांव आई धूप.
ग़म और ख़ुशी ने कितनी बार बदले पैरहन
यूं ज़ीस्त के सफ़र से गई छांव, आई धूप.
नलिनी विभा 'नाज़ली'

ये तिरा शहर तो सीमेंट का जंगल है यहां
धूप तो धूप है साया भी जला देता है.
हसीब सोज़

*

ये इंतिक़ाम है या एहतिजाज है क्या है
ये लोग धूप में क्यूं हैं शजर के होते हुए.
हसीब सोज़

*

तज़किरा आज तेरी गर्मी ए रूख़्सार का है
बर्फ़ सी सर्द हवा को भी पसीना आया.
हसन फ़तेहपुरी

*

कौन है धूप सा छांव सा कौन है
मेरे अंदर ये बहरूपिया कौन है.
हस्तीमल हस्ती

*

मो'जिज़ा ऐसा जहां में अब तलक देखा न था
चल रहा था धूप में वो साथ में साया न था.
हर्ष अदीब

*

छांव अफ़्सोस दाइमी न रही
धूप का क्या रही रही न रही.
इरशाद ख़ान सिकंदर

*

हिज्र की धूप में छांव जैसी बातें करते हैं
आंसू भी तो माओं जैसी बातें करते हैं.
इफ्तिख़ार आरीफ़

*

अमीरी और गरीबी में धूप छांव सी अनबन है
दोनों में बीच रहती दिन और रात सी जंग हैं.
जावेद उस्मानी

*

चीख़ते फिर रहे हैं साए क्यों?
रख गई धूप सायबान में क्या?
जावेद अकरम

*

किसने सहरा में मिरे वास्ते रक्खी है ये छांव
धूप रोके है मिरा चाहने वाला कैसा.
ज़ेब ग़ौरी

*

ये सोच कर के कोई सूरज चुरा न ले
अब धूप भी घरों में भरने लगे हैं लोग.
कलीम खान

*

शदीद धूप में जब तक रहे तो थे महफूज़,
हम इक दरख़्त के साये में आ के मारे गये.
कालीचरण सिंह

*

एक सा वक़्त किसका रहा है कभी
मौसमी छांव है मौसमी धूप है.
कुलदीप गर्ग तरुण

*

अपने लफ़्ज़ों में भी कुछ तो गर्मी ला,
ग़ज़लों में भी अपनी तेवर पैदा कर.
कृष्ण कुमार बेदिल

*

गाते हुए पेड़ों की ख़ुनुक छांव से आगे निकल आए
हम धूप में जलने को तिरे गांव से आगे निकल आए.
क़तील शिफ़ाई

गर्मी आई

डॉ. हेमंत कुमार

जाड़ा गया लो गर्मी आई,
बरफ मलाई संग ले आई.
दिन छोटे से बड़े हुए अब,
रातें हो गईं छोटी,
बंदर जी ने सिल बट्टे पर,
ठंढाई है घोटी.
जाड़ा गया.....
भालू भी क्यों रहता पीछे,
उसने ली अंगड़ाई,
झट से पहुंचा नदी किनारे,
डुबकी एक लगाई,
जाड़ा गया.....
घोड़े को जब कुछ ना सूझा
उसने दौड़ लगाई,
गधे ने अपने पैर पटक कर
ढेरों धूल उडाई,
जाड़ा गया.....
जाड़ा गया लो गर्मी आई,
बरफ मलाई संग ले आई.

चरणसिंह अमी की स्त्री-केंद्रित कविताएं

समीक्षा: सुजाता कुमारी

(प्रकाशक: ज्वाला, इंदौर(म.प्र.), पृष्ठ संख्या: 72, मूल्य: 120.00 रुपय)

स्त्री और पुरुष दोनों के साहचर्य से इस पृथ्वी का संतुलन बना हुआ है. पुरुष दैहिक रूप से स्त्री से बलवान जरूर है किंतु स्त्री का विस्तार कई-कई अर्थों में पुरुष से व्यापक है. कवि चरणसिंह अमी अपने कविता संग्रह 'स्त्री पक्ष' में स्त्री के उन्हीं पक्षों को जानने और उसकी परतों को खोलने का प्रयास करते दिखते हैं. संग्रह की पहली ही कविता 'क्षिति जल पावक गगन समीरा' में वे आग, पानी, हवा सभी कुछ पा लेने के बाद भी नए पंचतत्व की अभिलाषा रखते हैं क्योंकि स्त्री को प्रत्येक कोण से जानने-समझने के प्रयास के बावजूद वह स्त्री पर एक पूरी और मुकम्मल कविता लिख पाने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं-

"ओ ईश्वर दो मुझे
नए पंचतत्व
मेरे पंचतत्व अपर्याप्त है
स्त्री पर कविता लिखने के लिए."

कवि की दृष्टि में 'स्त्री' ही कविता का रूप है. उसमें जीवन के बीज समाहित है, वह सृष्टि की आधार शक्ति है, इसलिए उस पर पूर्णतया कुछ भी लिख पाना संभव नहीं है. सदियों से लोग स्त्री पर कविता लिखने का प्रयास करते रहे हैं फिर भी हर बार कुछ न कुछ छूट जाता है. स्त्री-मन के साथ घटित होने वाले सपने, किस्से, हंसी, रुलाइयां, सवाल, संघर्ष, समझौते, प्रेम, नफरत, खुशी, मातम आदि के रूप में स्त्री जीवन के कई पहलू और रंग देखे जा सकते हैं. कवि स्त्री के इन्हीं भाव-रूपों पर गहराई से विचार करते हैं. वे कहते हैं-

"स्त्री हंसती है
तो कविता हंसती है
कविता चुप रहती है
तो रोती है स्त्री."

पूरी समष्टि के लिए 'स्त्री का होना कितना जरूरी है' के महत्त्व को रेखांकित करती हैं ये पंक्तियां. स्त्री के भीतर का ममत्व, करुणा, प्रेम, क्षमा जैसे भाव पुरुष के जीवन की बागडोर को न सिर्फ संभालते हैं वरन् पूरे परिवार को वह जिस नेह से सजाती-संवारती है वह प्रकृति की पवित्र, निष्छल और सुंदर जीवन-राग है. इसी लिए कवि 'स्त्री' होने का अर्थ कविता में ही निहित मानते हैं. वे उनका प्रतिरोध करते हैं जो स्त्री के खिलाफ साजिश रचते हैं या उनके अस्तित्व को ठुकराते हैं.

स्त्रियों के मन पर सदियों से चोट की गयी है. वे यशोधरा, उर्मिला, मीरा, महादेवी, सिमोन, तस्लीमा नसरीन, फहमिदा रियाज, सारा शगुफ्ता जैसी स्त्रियों के रूप में हमेषा ही दुःख का उद्भेदन करती हुई दिखी हैं. उनका दुःख कभी कम नहीं हुआ वरन् इस दुःख का विस्तार ही होता गया है. उनकी उस अथाह पीड़ा को कवि अपने संवेदनशील मन में महसूस करते हैं. वे उस चोट खायी स्त्री-स्वर को सुनने के लिए किसी देह की जरूरत को महसूस करते हैं जहां उसके विकल और द्रवित मन को सुकून मिले. 'स्त्री का स्वर' कविता में कवि लिखते हैं-

"जब मन टूटता है आवाज नहीं आती
ध्वनिहीन हो जाता है स्वर.

कवि समाज के सामने यह प्रश्न करते हैं कि "क्या संसार भर की स्त्रियों का दर्द और उनका स्वर एक-सा नहीं होता?" कवि की यह चिंता लाजमी है. संसार भर की स्त्रियों की पीड़ा, उनकी कलप और रुदन एक-सी होती है. समाज में स्त्री के स्वर में इतनी पाबंदियां है कि वे वहां भी अपनी बात ठीक से नहीं कह पातीं.

चूल्हे से स्त्री का रिश्ता सदियों से एक-सा रहा है जैसे स्त्री और चूल्हा एक-दूसरे का पर्याय हो. 'तपती है स्त्री' कविता में कवि लिखते हैं-

"चूल्हा कोई भी हो
घर के भीतर चाहे बाहर
चाहे पके उसमें अन्न
चाहे तपे लोहा
अंततः पकती है तपती है स्त्री."

इस काव्य संग्रह में स्त्री के विभिन्न पक्षों को उजागर करते हुए कवि चरणसिंह अमी स्त्री-हृदय में पल्लवित प्रेम पर भी बात करते हैं. स्त्री-साहचर्य के बिना जगत में कुछ भी अच्छा नहीं है. वे स्वयं को संकेतित करते हुए कहते हैं कि वे जब स्वयं अपनी पत्नी को नहीं देख पाते तो उनको अपना चेहरा भी धुंधला नजर आता है. अपना अस्तित्व अपनी पत्नी में देखना-मानना और अनुभूत करना स्त्री के महत्त्व और गरिमा को रेखांकित करता है. इसी प्रकार स्त्री-स्पर्ष उन्हें प्रेम की गहरी अनुभूति प्रदान करता है.

'तुम्हारे लिए', 'कुछ अच्छा नहीं लगता उस दिन', 'सौंदर्य', 'असर', 'मेरा बहुवचन' शीर्षक से लिखी कविताओं में कवि का स्त्री के प्रति सम्मान और अनुराग का भाव प्रस्तुत होता है. समग्रता में कहें तो यह संकलन एक पुरुष के दृष्टिकोण से स्त्री-जीवन के सुख-दुःख को जानने-समझने, उसके अंतर्विरोध को सामने रखते हुए समाज में उसकी सत्ता और महत्ता को रेखांकित करता है.

हिंदी त्रैमासिक
पहचान
देश से हम, हमसे देश

रचना आमंत्रण

अंतर्राष्ट्रीय, हिंदी त्रैमासिक ऑन लाइन पत्रिका ''पहचान'' हेतु आप भी रचनाएं भेज सकते हैं.

आलेख, समीक्षा, साक्षात्कार, शोध परक लेख, व्यंग्य, संस्मरण, यात्रा वृत्तांत, लोक साहित्य, बाल साहित्य, कविता, गीत, कहानी, लघु कथा आस्था, धरोहर, इतिहास, कला, विज्ञान, स्वास्थ्य आदि साहित्य की सभी विधाओं में रचनाओं का स्वागत है.

रचनाएं वर्ड फाइल में अपनी तस्वीर और परिचय सहित भेजें. लेख के लिए 800 से 1,000 और कहानी के लिए अधिकतम शब्द सीमा 1600 शब्द है.

यदि आप अपना खींचा कोई चित्र पत्रिका के कवर पेज या फिर तिमाही चित्र चयन के लिए विचारार्थ भेजना चाहें तो अपने परिचय के साथ चित्र के बारे में बताते हुए ई – मेल कर सकते हैं.

संपादक मंडल का निर्णय अंतिम निर्णय होगा, इसमें विवाद की गुंजाईश नहीं होगी.

editor@pehachaan.com